हिंदुओं को पीछे ढकेलने के लिए इस्लाम पर नई गांधीगिरी

क्या आपने ध्यान दिया है कि कश्मीरी, बंगाली या पंजाबी हिन्दुओं के बीच महात्मा गांधी कभी लोकप्रिय नहीं रहे? कारण था: वास्तविक जीवन का सबक। अपने लंबे अनुभव से उन्होंने गांधीजी की अनेक नीतियों और विचारों को बचपना या क्रूर मजाक से अधिक कुछ नहीं माना।

बंगाली हिन्दुओं का हाल समझने के लिए तथागत राय की 'माई पीपुल अपरूटेड' या कश्मीरी हिन्दुओं की दुर्गति के लिए क्षमा कौल का उपन्यास 'दर्दपुर' पढ़ें। प्रकारांतर वह पूरे हिन्दू भारत की विडंबना है। कश्मीरी हिन्दुओं का जीवन लंबे काल से इस्लामी मनमानी का बंधक था। कश्मीर को क्रमशः दारुल-इस्लाम बनाने की नीति कभी छोड़ी नहीं गई थी। केवल राजनीतिक शक्ति-संतुलन को देखते वह कभी तीव्र, कभी स्थगित, तो कभी मंद रही।

डेढ़ सौ वर्ष पहले भी कश्मीरी गांव में किसी पंडित की जमीन बस यह कह कर मजे से हथियाई जा सकती थी कि उस की जमीन पर 'कब्र का पत्थर' दिखा है। यानी, वह इस्लामी जमीन हुई और अब पंडित उस से हाथ धो ले। असलियत जान कर भी कोई कुछ नहीं कर सकता था! ऐसे ही तरीकों-कारणों से हिन्दू पंडित – विनम्र, शांतिप्रिय, विद्वान हिन्दू – अपनी पाँच हजार वर्ष पुरानी पूर्वजभूमि से धीरे-धीरे, निस्सहाय विस्थापित होते गए। भारत के सभी नेता यह सब देखते रहे और आज भी बस देख ही रहे हैं!

बीसवीं शती में भी कश्मीर के हिन्दू को हालात रोज दिखाते थे कि मुस्लिम बहुलता के बीच वह दूसरे दर्जे का नागरिक है। उन के रहमो-करम, शर्तों पर जी रहा है। वह जीवन इतना लाचार था कि मुस्लिम नेताओं की आपसी प्रतिद्वंदिता, या दूर-दराज, विदेश की किसी घटना की भी पहली सजा उसे ही मिलती थी। क्योंकि वह 'काफिर', मूर्तिपूजक, हीन, इसलिए दंडनीय है। सो उस के साथ किसी मुसलमान द्वारा दुर्व्यवहार या अन्याय क्यों न किया जाए, इस्लामी कायदा व समाज या तो उसे सही बताएगा या आँख बंद रखेगा। कोई दयालु, मुअतबर मुसलमान भी बेचारे हिन्दू की खास मदद नहीं कर सकता। ज्यादा हमदर्दी पर उसे भी सजा भोगनी होगी – यही इस्लामी रिवाज रहा है। एक स्थाई सच, जिसे कश्मीरी पंडित सत्य के साथ 'प्रयोग' करने वाले गांधी से अधिक गहराई से जानता था।

इसीलिए 'दर्दपुर' की बुढ़िया भट्टिनी गांधी से चिढ़ती थी। जो इस्लामियों को समझता नहीं, या समझना नहीं चाहता, या उसे 'महात्माई' का रोग लगा हुआ था। वह तो कहीं भारत में, हिन्दू बहुलता

के बीच सुरक्षित ससम्मान रहते हुए मजे से 'ईश्वर अल्ला तेरो नाम... ' का एकतरफा भजन करता रहता था। बिना चिंता कि कोई ईमाम या मुस्लिम नेता वह मानने को तैयार नहीं। तब कश्मीरी हिन्दू तो बेचारा अरक्षित ही रहेगा। यह था कश्मीरी हिन्दुओं में गांधी के प्रति उदासीनता का कारण।

वस्तुतः पूरे भारत में भी गांधी की खामख्याली से हिन्दू ही गफलत में पड़े। मुसलमानों उस से अप्रभावित रहे। वे कभी गांधी के निकट न आए। राष्ट्रीय आंदोलन में भी उन्हें साथ लेने में गांधी पूर्ण विफल रहे। मुस्लिम प्रेस में गांधी के लिए बेदह भद्दे, गंदे विशेषणों का प्रयोग होता था। पर गांधी एकता के लोभ में हिंन्दुओं की तरफ से निरंतर जमीन छोड़ते गए। तब भी उन्हें अब्दुल बारी, अली बंधु, जिन्ना या सुहरावर्दी जैसों की खुशामद ही करते रहनी पड़ी। गांधी न मुसलमानों में जगह बना सके, न उन की 'महात्माई' मुस्लिम बहुल इलाकों में हिन्दुओं को बचा सकी। चाहे पंजाब, बंगाल, कश्मीर, चाहे शेष भारत के मोपला, गोधरा जैसे क्षेत्र जहाँ हिन्दू अल्पसंख्या में घिरे हुए रहते थे।

ऐसा नहीं कि गांधी इस्लामी प्रवृत्ति से अनजान थे। उन्होंने कहा था कि एक औसत मुसलमान आक्रामक और एक औसत हिन्दू कायर होता है। पर इस का कारण और उपाय ढूँढने में गांधी असमर्थ रहे। 1947 में देश-विभाजन तथा पंजाब, बंगाल, कश्मीर में दसियों लाखों हिन्दुओं का एकाएक एवं क्रमशः संहार तथा विस्थापन उसी का नतीजा थे। विफलता और भी त्रासद इसलिए हुई क्योंकि गांधी को पहले भी कई बार वही विफलता, विश्वासघात मिल चुका था। फिर भी, उसी तुष्टीकरण ने इस्लामी आक्रामकता की भूख और बढ़ा दी।

खलीफत आंदोलन (1916-1920) के अंतर्राष्ट्रीय इस्लामी उद्देश्य को समर्थन देकर, जो भारतीय राष्ट्रीय हित के विरुद्ध था, गांधी ने क्या पाया ? उन के अपने शब्दों में सुनिए। महादेव भाई के सामने 18 सितंबर 1924 को गांधी कहते हैं, "मेरी भूल ? हाँ, मुझे दोषी कहा जा सकता है कि मैंने हिन्दुओं के साथ विश्वासघात किया। मैंने उन से कहा था कि वे इस्लामी पवित्र स्थानों की रक्षा के लिए अपनी संपत्ति व जीवन मुसलमानों के हाथ में सौंप दें। और इस के बदले मुझे क्या मिला ? कितने मंदिर अपवित्र किए गए ? कितनी बहनें मेरे पास अपना दुःख लेकर आईं ? जैसा मैं कल हकीमजी [अजमल खाँ] को कह रहा था, हिन्दू स्त्रियाँ मुसलमान गुंडों से मर्मांतक रूप से भयभीत हैं। मुझे ... का एक पत्र मिला है, मैं कैसे बताऊँ कि उस के छोटे बच्चों के साथ क्या दुराचार किया गया ? अब मैं हिन्दुओं को कैसे कह सकता हूँ कि वह हर चीज को धैर्य पूर्वक स्वीकार करें ? मैंने उन्हें भरोसा दिलाया था कि मुसलमानों के प्रति मैत्री का सुफल प्राप्त होगा। मैंने उन्हें कहा था कि वे बिना परिणामों की इच्छा के मुसलमानों को मित्र बनाने का प्रयास करें। उस भरोसे को पूरा करने की सामर्थ्य मुझ में नहीं है। और फिर भी मैं आज भी हिन्दुओं से यही कहूँगा कि मारने की अपेक्षा मर जाएं।"

इस भयावह अनुभव के बाद भी गांधी इस्लामी आक्रामकता के सामने हिन्दुओं के ससम्मान जीने का मार्ग नहीं खोज पाए। कायदे से, उस दारुण 'भूल-स्वीकार' के बाद उन्हें राजनीति छोड़ देनी चाहिए थी। वह नैतिक और देश-हितकारी होता। उन तमाम हिन्दू हत्याओं, बलात्कारों के जिम्मेदार गांधी थे, क्योंकि खलीफत-समर्थन में कांग्रेस को अकेले उन्होंने ही जिद कर झोंका था। उस के भयावह परिणाम बाद उन्हें देशवासियों के साथ अपने नौसिखिए प्रयोग और करने का कोई अधिकार न था। लेकिन गांधी आगे चौबीस वर्ष, आजीवन उसी तुष्टीकरण पर, वही कुफल पाते, चलते रहे ! मुस्लिम लीग का 'द्वि-

राष्ट्र सिद्धांत', 'डायरेक्ट एक्शन', देश-विभाजन और लाखों-लाख हिन्दुओं का संहार एवं शरणार्थियों में बदल जाना। यह गांधीवाद की देन थी।

वस्तुत: इस्लाम संबंधी समस्याओं पर गांधी जैसे विचार व कर्म अज्ञान से पनपते हैं। यह हिन्दुओं का आत्म-मुग्धकारी अज्ञान या भ्रम है। मुसलमान इस भ्रम में कभी न पड़े। सहृदय, सज्जन मुसलमान भी। वे जानते हैं कि उन का मजहब सभी धर्मों की बराबरी जैसी बात मानना तो दूर, उसे 'कुफ्र', दंडनीय समझता है। अत: गांधीवाद, नेहरूवाद, सेक्यूलरवाद जैसे विचार सदैव एकतरफा, इसलिए हिन्दुओं के लिए घातक साबित हुए। कश्मीरी हिन्दुओं का विस्थापन इस का केवल नया चरण था।

गांधीगिरी न छोड़ने से यहाँ अन्य प्रदेशों में भी क्रमश: वही होगा। चाहे कांग्रेस के बदले अब भाजपा नेता उस के साधन बन रहे हैं। बड़े-बड़े भाजपा नेताओं द्वारा 'मुसलमानों का भारतीयकरण', 'एक हाथ में कुरान और दूसरे में कम्प्यूटर' अथवा 'मुहम्मद साहब के संदेश पर चलने' के आवाहन उसी के दुर्भाग्यपूर्ण संकेत हैं। संघ-भाजपा के जो लोग सोचते हों कि उन के नेता के पास कोई 'रणनीति' या जादू है, वे याद रखें कि गांधी के भी लाखों भक्त उन्हें अलौकिक, चमत्कारी समझते थे। उसी भरोसे लाखों हिन्दुओं का विनाश हुआ।

राजनीति ही नहीं, आर्थिक जीवन में भी कोई चमत्कार नहीं होता। कर्म-फल का वैदिक सिद्धांत व्यक्ति ही नहीं, समाज और देश पर भी अकाट्य रूप से लागू है। कुनीति या नीतिहीनता से वही मिलेगा, जो सदैव मिला है। कोई महात्मा इसे नहीं बदल सकता।

साभार- https://www.nayaindia.com से